यह अष्टपाहुड़। इसकी नौवीं गाथा चलती है। आठ पूरी हुई। **अब कहते हैं कि ऐसे भ्रष्ट पुरुष स्वयं भ्रष्ट हैं, वे धर्मात्मा पुरुषों को दोष लगाकर भ्रष्ट बतलाते हैं–**

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोगगुणधारी।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति।।९।।

मूल सनातन वीतराग का धर्म, उसका मुनिपना बाह्य नग्नदशा, अन्तर में तीन कषाय के अभाव की दशा और अट्ठाईस मूलगुण थे, वह जैनदर्शन था। अनादि का सर्वज्ञ का कहा हुआ यह मार्ग था। उसमें फेरफार हो गया, उसकी अन्दर बात करते हैं। जो कोई धर्मात्मा है, वीतराग के मार्ग प्रमाण, उनसे भ्रष्ट हुए ऐसे धर्मात्मा को दोष बताते हैं। यह बात कुन्दकुन्दाचार्य करते हैं।

जो पुरुष धर्मशील अर्थात् अपने स्वरूपरूप धर्म को साधने का जिसका स्वभाव है... कैसे हैं धर्म पुरुष? कि अपना स्वरूप धर्म—ज्ञान, आनन्द और शान्ति ऐसा जो

अपना आत्मधर्म, उसे साधने का जिसका स्वभाव है। राग को साधे या उसे यहाँ नहीं कहा। पश्चात् व्यवहार हो, वह बतलायेंगे। यह वस्तु आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा है, उसे साधने का जिसका स्वभाव है। दिगम्बर धर्म, मुनिधर्म, जैनधर्म, वास्तविक धर्म वीतराग का कहा हुआ मार्ग यह है। अनादि से यह मार्ग था और भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव थे, तब भी था। सम्प्रदाय में से अलग पड़ गये, वे इसकी निन्दा (करने के लिये) दोष निकालते हैं। अपना अभिमान पोषण करने के लिये (दोष निकालते हैं) उसकी जरा बात करते हैं।

धर्म को साधने का जिसका स्वभाव है... एक बात। **तथा संयम अर्थात् इन्द्रिय–मन का निग्रह...** पाँचों ही इन्द्रिय और मन का निग्रह। अनीन्द्रिय आत्मा भगवान में रमणता (होना), वह संयम है। **और षट्काय के जीवों की रक्षा,...** छह काय के जीव भगवान ने कहे हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस छह (काय) जीव हैं, छह प्रकार के। एक इन्द्रिय अनन्त हैं, दूसरे असंख्य हैं। उन सब जीवों की दया पालने का जिसका भाव है अर्थात् जिसे नहीं मारने का भाव है। यह छह काय के जीव हैं। एक ही पंचेन्द्रिय ही हैं या एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं है। अनन्त आत्मायें हैं। उसमें भी उनकी मर्यादा किसी की एकेन्द्रिय जीवरूप से, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय,पंचेन्द्रिय। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। ऐसे जीव भगवान सर्वज्ञ ने देखे हैं। उसकी उसे प्रतीति और श्रद्धा होती है, इससे उनकी दया पालता है। मुनि छह काय के रक्षक हैं। आहाहा! पानी की एक बूँद में भी असंख्य जीव हैं। उनका घात नहीं करता। एक हरित काय का टुकड़ा हो, उसमें असंख्य जीव ऐसे पीपल आदि में हैं। उनका भी वह घात नहीं करता, स्पर्श नहीं करता। गति–गमन करने में भी नीचे एकेन्द्रियादि जीव हों, उनका स्पर्श नहीं करता, ऐसा तो उसका दया का भाव होता है। छह काय की दया होती है, ऐसा कहते हैं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय... सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने ये जीव देखे नहीं हैं। समझ में आया? तीन बोल हुए।

तप अर्थात् बाह्याभ्यंतर भेद की अपेक्षा से बारह प्रकार के तप,... होते हैं। जिसे बाह्य अनशन, ऊनोदर, वृत्ति संक्षेप इत्यादि; अभ्यन्तर प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त्य आदि, ऐसे जिसे तप होते हैं। मुनि है न! नग्न मुनि जंगल में बसनेवाले होते हैं। वे मुनि, वे

चारित्रवन्त, वे संयमी। गृहस्थाश्रम में होवे तो उसे संयम और ऐसा चारित्र नहीं होता। समझ में आया? चाहे जैसा क्षायिक समकिती जीव हो, तथापि गृहस्थाश्रम में ऐसा संयम और छह काय की दया, यह नहीं होता। यह तो विश्व दर्शन है। जैनदर्शन अर्थात् विश्व दर्शन है। उसमें यह चीज़ है। (उसमें) उसे छह काय की दया का भाव होता है, तप होता है।

नियम अर्थात् आवश्यकादि नित्यकर्म,... सामायिक, समता, चौविसन्तो, अनन्त तीर्थंकरों का वन्दन, स्तुति, गुरु की स्तुति या तीर्थंकरादि की। प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग आदि हमेशा का कर्तव्य (होता है)। नग्नमुनि, मोक्ष का मार्ग देखो वहाँ। उसे यह आवश्यक क्रिया होती है। **योग अर्थात् समाधि,...** होती है। छठवें गुणस्थान में विराजमान मुनि को आत्मा के आनन्द की शान्ति, वास्तविक शान्ति बहुत प्रगट हुई होती है। कृत्रिम शान्ति जैसा अनादि से अज्ञान में दिखायी दे, वह शान्ति नहीं है। आत्मा अनन्त आनन्द का सागर! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में से जिसकी दशा में आनन्द उछलता है, उसे यहाँ समाधि कहा जाता है। आहाहा!

ध्यान... उसे आत्मा के स्वभाव का ध्यान होता है। असंख्य प्रदेशी प्रभु आत्मा, अनन्त गुण का धाम, उसका जिसे ध्यान होता है। चौथे, पाँचवें में होता है (परन्तु) थोड़ा (होता है), मुनि को विशेष होता है। यहाँ मुनि की व्याख्या है न? दिगम्बर सन्त जो मोक्षमार्गी, जो वीतराग के मार्ग में धोकरूप उत्सर्ग पन्थ चलता था, उसमें वे सन्त थे। इसलिए ऐसे सन्तों को देखकर दर्शन से भ्रष्ट हुए दोष निकालते हैं। श्रद्धा रखना। भ्रष्ट हुए दूसरे को भ्रष्टपना बतलाते हैं। समझ में आया?

वर्षाकाल आदि कालयोग,... योग की व्याख्या करते हैं। वर्षाकाल। चार महीने का चातुर्मास, एक स्थान में रहते हैं। जंगल में वृक्ष के नीचे (रहे) या कोई ऐसा खाली मकान बाहर जंगल में खाली पड़ा हो, उसमें स्थित रहते हैं। ऐसे वर्षाकाल के चार महीने एकान्त वर्षाकाल में व्यतीत करते हैं। आहाहा! **गुण अर्थात् मूलगुण,...** अट्ठाईस। पंच महाव्रत, छह आवश्यक, खड़े-खड़े आहार, अदन्तधोवन, लोंच ऐसे अट्ठाईस गुण होते हैं। वे हैं सब विकल्प। ऐसा जिसे पालन होता है। आहाहा! ऐसा धर्म और मुनिमार्ग ऐसा होता है। उसे पालन नहीं कर सके, इसलिए भ्रष्ट होकर दूसरा मनवाया है, उसकी यहाँ बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य हैं, महावीतरागी सन्त हैं। आनन्द में झूलते हुए छठवें-सातवें गुणस्थान में। एक दिन में हजारों बार जिन्हें प्रमत्त-अप्रमत्तदशा आती है। वे कहते हैं कि ऐसे सन्तों की जो कोई दोष और निन्दा करे, इस काल में ऐसा हो पड़ा है, क्या हो ? स्वयं भ्रष्ट हुए। नग्नरूप रह नहीं सके। फिर नये शास्त्र बनाये, उनमें कल्पित बातें रखीं और फिर सच्चे सन्त का विरोध किया। दो हजार वर्ष पहले से ऐसा का ऐसा चला आता है।

उत्तरगुण... पाँच समिति, गुप्ति, बाहर की अथवा अनेक प्रकार क्षमा, निर्मानता, ऐसे जो उत्तरगुण **इनका धारण करनेवाला है, उसे कई मतभ्रष्ट...** लो, यह यहाँ आया। जैनधर्म का दिगम्बर मार्ग अनादि का सन्तों का यह था और यह है। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में भगवान केवली विराजते हैं, वहाँ यह मार्ग है। हजारों सन्त दिगम्बर मुनि अभी आनन्दकन्द में झूलते हुए (विचरण कर रहे हैं)। ऐसा मार्ग अनादि का (चलता है), उसमें से जो भ्रष्ट हुए (वे) **दोषों का आरोपण करके कहते हैं कि यह भ्रष्ट है,...** ऐसे मतभ्रष्ट हुए मत में रहनेवालों की निन्दा करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **यह भ्रष्ट है, दोषयुक्त है,...**

वे पापात्मा जीव स्वयं भ्रष्ट हैं, इसलिए अपने अभिमान की पुष्टि के लिए अन्य धर्मात्मा पुरुषों को भ्रष्टपना देते हैं। आहाहा! जीव ने किया है न ऐसा! मनुष्यपना मिला, जैन के सम्प्रदाय में आये, वहाँ भी फिर अभिमान का पोषण किया। आहाहा! जिसे अनन्त काल में अभी निगोद में से निकलकर मनुष्य होना मुश्किल, उसमें यहाँ तक आये, उसमें वापस यह दशा। जहाँ भव के अभाव के काल में मुनिपने हुए, ऐसे मुनियों को अपने धर्म से भ्रष्ट होकर उनने भी दोष किये हैं। अपने अभिमान की पुष्टि के कारण (ऐसा किया है)। हम साधु हैं, हम ऐसे हैं, हमारा मार्ग ऐसा है, वे सब भ्रष्ट नग्न साधु हैं, ऐसा करके कहते हैं। बेचारे जगत को... वहाँ क्या हो ?

दो हजार वर्ष पहले यह बात थी। यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए, इससे पहले श्वेताम्बर पन्थ जैन में से निकल चुका था। आहाहा! उस सम्बन्धी की यह बात है। यह मार्ग जगत को जँचना कठिन है। अनेक प्रकार जगत के धर्म के नाम पर अनेक प्रकार और पन्थ और मार्ग... आहाहा! सबसे यह सर्वज्ञ का मार्ग पूरा अलग है। आहाहा! सर्वज्ञस्वरूप ही प्रभु है। उसमें से जिसने सर्वज्ञपना प्रगट किया, उन्होंने तीन काल-तीन लोक हस्ताकमल

की भाँति देखे। जैसे, आंवला हो, वैसा देखा। वह बराबर न देखा जाए, उसने तो प्रत्यक्ष देखा। आहाहा! ऐसा जो भगवान ने कहा हुआ मुनि का धर्म और सन्तों की धर्म की क्रिया अन्तर और बाह्य, उसे पालन नहीं कर सके, वे भ्रष्ट हुए और पालन करनेवालों की निन्दा और दोष लगाये। इसमें कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं, लो।

भावार्थ ह्न पापियों का ऐसा ही स्वभाव होता है... आहाहा!

मुमुक्षु : यह धर्मी का स्वभाव, यह पापी का स्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्मशील है न? मिथ्यादृष्टि की श्रद्धा जहाँ मिथ्यात्व है, उसमें ऐसा ही उसका स्वभाव होता है। सत्य को स्पर्श नहीं होने देता। सत्य को स्पर्श नहीं होने देता। सत्य की वाणी कान में आवे तो वह (विरोध करता है)।

उसीप्रकार धर्मात्मा में दोष बतलाकर अपने समान बनाना चाहते हैं। ऐसे पापियों की संगति नहीं करना चाहिए। आहाहा!

गाथा-१०

अब कहते हैं कि जो दर्शन भ्रष्ट है, वह मूलभ्रष्ट है, उसको फल की प्राप्ति नहीं होती–

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।।१०।।

यथा मूले विनष्टे द्रुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धिः।
तथा जिनदर्शनभ्रष्टाः मूलविनष्टाः न सिद्ध्यन्ति।।१०।।

परिवार तरु का मूल बिन जैसे कभी बढ़ता नहीं।
जिन-दर्शनात्मक मूल बिन त्यों सिद्धि नहिं होती कभी।।१०।।

अर्थ – **जिस प्रकार वृक्ष का मूल विनष्ट होने पर उसके परिवार अर्थात् स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल की वृद्धि नहीं होती, उसी प्रकार जो जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं, बाह्य**

में तो नग्न-दिगम्बर यथाजातरूप निर्ग्रन्थ लिंग, मूलगुण का धारण, मयूर पिच्छिका (मोर के पंखों की पींछी) तथा कमण्डल धारण करना, यथाविधि दोष टालकर खड़े-खड़े शुद्ध आहार लेना - इत्यादि बाह्य शुद्ध वेष धारण करते हैं तथा अन्तरंग में जीवादि छह द्रव्य, नवपदार्थ, सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान एवं भेदविज्ञान से आत्मस्वरूप का अनुभवनह्लऐसे दर्शन-मत से बाह्य हैं, वे मूलविनष्ट हैं, उनके सिद्धि नहीं होती, वे मोक्षफल को प्राप्त नहीं करते।

गाथा-१० पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो दर्शन भ्रष्ट है, वह मूलभ्रष्ट है, उसको फल की प्राप्ति नहीं होती -

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।।१०।।

अर्थ - जिस प्रकार वृक्ष का मूल विनष्ट होने पर... वृक्ष का मूल जहाँ नष्ट हुआ, **उसके परिवार अर्थात् स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल की वृद्धि नहीं होती,...** मूल ही नहीं है। **मूलं नास्ति कुतः शाखा** आता है न? जिसका मूल ही नहीं है, उसे स्कन्ध, पत्र, फल-फूल होते ही नहीं। **उसी प्रकार जो जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं,...** आहाहा! जैनदर्शन अर्थात् दिगम्बर दर्शन। मुनिपने का भाव, अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अन्तर के आनन्द की उग्र लहर जिन्हें प्रगट होती है और व्यवहार में उन्हें पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (अपरिग्रह) के भाव प्रगट हुए हैं। व्यवहार छह आवश्यक होते हैं, खड़े-खड़े आहार होता है। ऐसा जो जैनदर्शन, ऐसा जो आत्मदर्शन, ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उससे भ्रष्ट हुए हैं।

बाह्य में तो नग्न-दिगम्बर यथाजातरूप निर्ग्रन्थ लिंग,... है न? अनादि-सनातन, नग्न दिगम्बर और अन्तर में आनन्द और शान्ति, स्वच्छता और पवित्रता की पुकार थी। समता के रस में झूलते थे। आहाहा! घड़ीक में छठा गुणस्थान, घड़ीक में सातवाँ। क्षण में छठा, क्षण में सातवाँ। क्योंकि निर्विकल्प तो एक सेकेण्ड के अन्दर रह

सकते हैं। मुनि, हों! नीचे के गुणस्थान में तो थोड़ा (रहते हैं)। आहाहा! चौथे गृहस्थाश्रम में समकिती हो और पाँचवें में हो, वह तो बहुत थोड़ा (रह सकता है)। निर्विकल्प की दशा तो एक सेकेण्ड के अन्दर के भाग में होती है, ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। (जिसे) खबर नहीं, उसे ऐसा लगता है कि मानो घण्टे-घण्टे, दो-दो घण्टे समाधि में रहते हैं। यह तो उसे वस्तु की खबर नहीं है। श्रद्धा की खबर नहीं है, आत्मा की खबर नहीं है। समझ में आया? यह तो मुनि जो होते हैं, नग्न, अन्तर आत्मदर्शन, अनुभव के उपरान्त जिन्हें चारित्र की-आनन्द की लहर आयी है। ऐसे मुनियों को भी निर्विकल्पदशा तो एक सेकेण्ड के अन्दर में आती है। सातवाँ आता है तब। आहाहा! समझ में आया? ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। ऐसा जो भाव...

बाह्य में तो नग्न-दिगम्बर यथाजातरूप निर्ग्रन्थ... जैसा माता ने जन्म दिया, वैसी वैराग्य की मूर्ति! जिसे उपशमरस का ढाला ढल गया है! आहाहा! जिसके शरीर में उपशम-अकषायरस बाहर दिखता है। स्थिर होकर शान्तबिम्ब अन्दर पड़ा है न! अन्दर में चारित्रवन्त हैं न। आहाहा! ऐसे धर्मात्मा का शरीर भी शान्त... शान्त... स्थिर हो गया (होता है)। माता ने जैसा जन्म दिया, ऐसा जिसका सरल सीधा नग्न शरीर होता है। आहाहा! उसे चारित्रवन्त और उसे मोक्षमार्गी कहते हैं। पूर्ण मोक्षमार्गी। चौथे में मोक्षमार्ग है परन्तु यह तीनों की एकता का मोक्षमार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्ममूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्ममूर्ति! ओहोहो! अकेला भगवान आत्मा आनन्द, ज्ञान और शान्ति का स्वभाव, उसे पर्याय में—वर्तमान अवस्था में पर्याय में प्रगट हुआ है। वस्तु में तो अनादि का है, परन्तु जिसकी वैभवदशा वर्तमान पर्याय में प्रगट हुई है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे ही सच्चा वैभव...

पूज्य गुरुदेवश्री : वही वैभव (सच्चा है)। इस धूल में क्या है? चले गये, देखो न! अरबोंपति, आहाहा! आज नहीं आया था? भाई! नवनीतभाई ने 'धार' का तुमने कहा था न 'विष्णु' कहा था न? धार का घड़ीक में लो ऐसे। मोटर में जाते थे तो मोटरवाले ने... ऐसा देखो वहाँ गर्दन ढल गयी, मर गया। मोटर में। वह अपने यहाँ आ गया था। सात-

आठ दिन रहा था। हमने वहाँ उसके घर में दूध पीया था। कुण्डी के पास। उस क्षण में देह की स्थिति पूरी हो वहाँ... अभी जाते हैं ऐसे मोटर में। वह ड्राईवर पीछे मुड़कर पूछता है, किस ओर है साहब? ऐसे देखे वहाँ तो मर गया। भाई ने सवेरे कहा था। आहाहा!

ऐसा नाशवान मृतक कलेवर है। यह (शरीर) मुर्दा... मुर्दा है। अमृत का सागर परमात्मा अनादि से मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! उसकी शोभा से शोभा। उसे खिलाना-पिलाना और भोग देना... आहाहा! आता है न? (समयसार) ९६ गाथा। मृतक कलेवर। मुर्दा, यह शरीर तो जड़ है। इसकी क्रिया भी जड़ की जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। आत्मा कारण और शरीर चले, वह कार्य (-ऐसा) तीन काल में नहीं है। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है क्योंकि दो भिन्न चीज़ है, उसे भिन्न चीज़ कुछ कर नहीं सकती। आहाहा! यह भी खबर नहीं होती और धर्म हो जाए। मृतक कलेवर में अमृत का सागर, स्वभाव का समुद्र प्रभु (विराजमान है), उसे भूलकर मृतक कलेवर की सम्हाल में पड़ा है, उसे अन्ततः क्या हाथ आयेगा? मुर्दा मरते समय मूर्च्छा में मर जाए। असाध्य होकर मूर्च्छित होकर... जाओ, एकेन्द्रिय, लट और चींटी। आहाहा!

ऐसा जो वीतराग का धर्म था, उससे जो भ्रष्ट हुए... यहाँ तो कहते हैं, यथाजात निर्ग्रन्थ लिंग था। मूलगुण के धारण (करनेवाले थे)। अट्ठाईस मूलगुण जिनवर तीर्थंकरों ने कहे हुए विकल्प अट्ठाईस प्रकार के, हों! उन्हें होते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जब तक न हो, तब तक उन्हें ऐसे अट्ठाईस मूलगुण, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, छह आवश्यक, खड़े-खड़े आहार (लेना), निर्ग्रन्थ इत्यादि। अट्ठाईस मूलगुण (होते हैं)। ऐसी वस्तुस्थिति (होती है)।

मयूर पिच्छिका... मुनि मयूर पिच्छिका रखते हैं। कोई जीव-जन्तु (होवे तो निकालने के लिये)। यह रजोवरण और यह सब वस्तु कृत्रिम घुस गयी है, यह मुनिपना ही नहीं है, वहाँ कृत्रिम अर्थात् क्या कहना? आहाहा! एक मोर पिच्छी **तथा कमण्डल धारण करना, यथाविधि दोष टालकर खड़े-खड़े शुद्ध आहार लेना...** उनके लिये नहीं बनाया हुआ आहार। गृहस्थ ने अपने लिये बनाया हो। भिक्षा के लिये जायें (वहाँ) हाथ में ले लेते हैं, खड़े-खड़े (लेते हैं), यह मार्ग है। मुनि का मोक्ष का मार्ग जैनदर्शन में यह है। कहो, सुजानमलजी! ऐसा पालन न कर सके, इसलिए उसका बचाव नहीं करना

कि ऐसा भी अभी मार्ग है। आहाहा! **खड़े-खड़े शुद्ध आहार...** देखा? शुद्ध आहार। निर्दोष पानी और आहार खड़े-खड़े लेते हैं। वैराग्य की मूर्ति, शान्त मुद्रा है। ऐसी जो मुनि की दशा होती है **इत्यादि बाह्य शुद्ध वेष धारण करते हैं...** इत्यादि बाह्य शुद्ध वेष। सब कहा न? दोष टालना और यह सब।

तथा अन्तरंग में जीवादि छह द्रव्य,... भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्य कहे हैं, छह वस्तुएँ। उनमें एक आत्मा, एक परमाणु, एक काल, आकाश, धर्मास्ति और अधर्मास्ति – ऐसे छह द्रव्य भगवान ने अनादि देखे हैं। इन छह द्रव्यों की उन्हें श्रद्धा होती है। आहाहा! अनन्त-अनन्त आत्माएँ होती हैं, अनन्त-अनन्त, इससे अनन्तगुने रजकण, धूल-मिट्टी होती है। इसकी उन्हें श्रद्धा होती है। इनका उन्हें ज्ञान होता है। समझ में आया?

छह द्रव्य, नवपदार्थ,... नव तत्त्व—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। उन्हें सात पर्यायें होती हैं। उनकी मुनियों को-धर्मात्मा को श्रद्धा और ज्ञान होता है। आहाहा! यहाँ तो कुछ खबर नहीं होती और हमारे सम्यग्दर्शन है, (ऐसा कहते हैं)। अभिमान है। आहाहा! समझ में आया? **नवपदार्थ, सात तत्त्वों...** सात में वे पुण्य और पाप दोनों आस्रव में डाल दिये। इन सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान होता है। बराबर सर्वज्ञ परमेश्वर ने केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने ज्ञान में जैसा जाना और कहा, वैसी उन्हें श्रद्धा होती है। कम, अधिक, विपरीत श्रद्धा नहीं होती। आहाहा!

एवं भेदविज्ञान से... और राग तथा शरीर से, राग का विकल्प और शरीर तथा कर्म आदि सब चीज़ है, उनसे भेद करके **भेदविज्ञान से आत्मस्वरूप का अनुभवन...** भेदविज्ञान कब कहलाता है?—कि दूसरी चीज़ है। शरीर है, कर्म है, राग है, पुण्य-पाप का भाव है, वह है, उनसे आत्मा भिन्न है, ऐसा भेदविज्ञान का आत्म-अनुभव। **आत्मस्वरूप का अनुभवनह्नऐसे दर्शन-मत से बाह्य हैं,...** ऐसे दर्शन-मत से जो बाह्य हैं। भाषा देखी? आहाहा! पहले (गाथा में कहा) '**दंसणमग्गं**' कहा है। यह पहली बात ली है। ऐसा जो दर्शन और मत और धर्ममूर्ति, ऐसा जो मार्ग से भ्रष्ट है, **वे मूलविनष्ट हैं,...** मूल में नष्ट हो गये हैं। ऐसा जो जैनदर्शन अर्थात् जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु 'जिन सो हि है आत्मा' और रागादि विकल्प, शरीरादि अजीव, पुण्य-पाप के आस्रव से भगवान

आत्मा भिन्न है, यह जैन का स्वरूप ही है। ऐसे स्वरूप के भानसहित के ऐसे तत्त्व की उन्हें श्रद्धा होती है। ऐसे से जो भ्रष्ट हुए हैं, वे मूल में भ्रष्ट हो गये हैं। भगवानजीभाई! ऐसी बात है।

श्रीमद् में ऐसा स्पष्टीकरण वे लोग नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ तो सब गड़बड़ शामिल है। यह तो मार्ग ऐसा है, बापू! समझ में आया? यह तो स्पष्ट बात है। आहाहा! किसी के विरोध के लिये बात नहीं है, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। उसमें दूसरा क्या हो? वे बाह्य से मूलविनष्ट हैं। पाठ है न? गाथा। '**मूलम्मि विणट्ठे**' पहला पद है। '**मूलम्मि विणट्ठे तह जिणदंसणभट्ठा**' इसके साथ मिलाया है। मूल जिसका नास्ति है, उसे शाखा आदि नहीं होती। ऐसा जो वीतरागमार्ग जैनदर्शन का, धर्ममूर्ति का, उससे-उसकी श्रद्धा से जो भ्रष्ट हुए, (उनका) मूल में नाश है। आहाहा! ऐ... जाधवजीभाई! यह ऐसा है। तुम्हारा लड़का यह कहता है, हों! हाँ करता है।

मुमुक्षु : लड़का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का नहीं, भाई कहते हैं। उसके पिता भी सुनने बैठते हैं। चौदह वर्ष का है न? क्या कहा? दिलीप। इनके लड़के का लड़का बैठता है, पूर्वभव में से संस्कार लेकर आया है न! हमारे वजुभाई तो ऐसा कहते हैं, अपने में से ही मरकर आया है। अपने में से मरकर आया लगता है। चौदह वर्ष की उम्र में ऐसा! यह मार्ग है। यह करने से दूसरा मार्ग हो नहीं सकता, ऐसा जोर मारता है। वहाँ पाठशाला पढ़ाता है। कलकत्ता में पाठशाला पढ़ाता है। वह तो गृहस्थ व्यक्ति है। यह शास्त्र मुफ्त में बाँटता है, लड़कों को इकट्ठा करके। बहुत लाखोंपति तो भी... उनके पुत्र का पुत्र, इसलिए उसे पैसा... थे। वह पाठशाला पढ़ावे, उसका पैसा ले नहीं। लड़कों को पढ़ावे, यह मार्ग है, सुनो! बड़े भी बैठते हैं। किसी को पूछा था। कितने ही बड़े भी सुनने बैठ जाते हैं।

मुमुक्षु : बड़ों को रुचि हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें उस जाति का रस था न। ...मार्ग तो यह है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहा, नहीं? '**जह मूलम्मि विणट्ठे**' ऐसा यहाँ '**जिणदंसणभट्ठा**'। यह

'**मूलम्मि विणट्ठे**' के साथ मिलाया न? गाथा में। '**जह मूलम्मि विणट्ठे**' यह पहला पद। पश्चात् '**तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा**' ऐसा। समझ में आया? यह बाड़ा बाँधकर लोगों को मार डाला।

परसों के दिन एक आया था। वह है न? तुम्हारे यहाँ 'घीया', नहीं? चन्दुभाई के अपने मोहनभाई नहीं? कराचीवाले। उनका चन्दुभाई, वहाँ राजकोट में विवाह हुआ है न? लड़का कहे, मैं चन्दुभाई का साला हूँ। मोहनभाई हमारे रिश्तेदार होते हैं। घीया न? मैंने कहा, जानते हैं। परन्तु हम श्वेताम्बर हैं। दो लड़के थे परसों आये थे। चन्दुभाई का साला हूँ। मुझे तो खबर थी कि यह घीया है। मुझे कहा, घीया हूँ, परन्तु हम श्वेताम्बर हैं। हमें खबर नहीं? इस बाड़ा की जुदाई के लिये मार डाला। तूने कहा, चन्दुभाई का साला हूँ, तब से (खबर थी), तुम घीया हो और श्वेताम्बर हो (खबर है)। जवान व्यक्ति, बीस-पच्चीस वर्ष का। आहाहा! घी का व्यापारी। चौक में ही है न। देखा है, देखा है। घी कांटा नाम था। यह सच्चा। परन्तु मुझे तो यह कहना है, बात यह चलती थी, उसमें वह यह बोला, हम श्वेताम्बर हैं। परन्तु हम कहाँ यहाँ पक्ष... ऐई! मोहनभाई! यह सब श्वेताम्बर हैं। भगवानजीभाई श्वेताम्बर हैं। थे, लो न? आहाहा!

जिसे ऐसा मोक्षमार्ग और ऐसा बाह्यलिंग और अट्ठाईस मूलगुण जिसे रुचते नहीं, वह भ्रष्ट हो गया है। ऐसा मार्ग है। '**मूलविणट्ठा ण सिज्झंति**' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का अन्तिम शब्द है न? '**जह मूलम्मि विणट्ठे**' जिस वृक्ष का मूल नाश हुआ है, उसे परिवार नहीं है अर्थात् शाखा, फल, फूल, पत्र नहीं है। इस प्रकार जो ऐसे मार्ग से भ्रष्ट हुए, उनका मूल नाश हो गया। उन्हें कोई मोक्ष और सम्यग्दर्शन और ज्ञान नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग है। बाड़ा बाँधा न... तुम दिगम्बर। भाई! रहने दे ऐसा। सत्य है, वह ले न! आहाहा!

आँखें बन्द करके चले जाते हैं, यह देखो न! आहाहा! अरबों रुपये। क्षण में आँख मुँद गयी। भाई कहते थे। उनका भानेज। मामा को दो बजे दुखाव आया और साथ में आया समाप्त हो गये। अरबों रुपये। आहाहा! तेरा रुपया क्या करे? धूल और शरीर वह तो मिट्टी है। श्वास की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। यह श्वास का क्रिया जड़ है, उसे आत्मा कर सकता है? वह तो जड़ है। अरे... अरे! जगत को भ्रम पड़ता है। तत्त्व की खबर नहीं है न! आत्मा से श्वास चले और आत्मा से शरीर चले, आत्मा कारण है और देह के काम

कार्य हैं—यह दृष्टि मिथ्यात्व और अज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! गजब दसवीं गाथा। यहाँ आया।

ऐसे दर्शन-मत से बाह्य हैं, वे मूलविनष्ट हैं,... अन्तिम शब्द है न? **उनके सिद्धि नहीं होती,... 'ण सिज्झंति'** ऐसे जीवों को मोक्ष नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग है। ऐ झाँझरी! तुम्हारे यहाँ बहुत विवाद है, मक्षी में। यह मार्ग तो अनादि का है। दिगम्बर दर्शन, यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही अनादि का ऐसा है। मुनिपना ऐसा ही होता है, यह भी वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! उसमें करके किया है और कल्पना (की है) वैसा यह नहीं है। आहाहा!

जैसा भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द का नाथ है, उसकी पर्याय में भूल है, उसका भी ज्ञानी को भान होता है और वह आत्मा अरूपी है, उसे रूप नहीं होता। अज्ञानी को अन्दर कुछ भासित होता है न, लाल, सफेद, पीला, और झवक, यह सब जड़ है। आँखें बन्द करके फिर अन्दर दिखायी दे लाल, पीला वह तो सब जड़ है। आत्मा कहाँ है? (आत्मा को) ऐसा रंग नहीं होता, वह तो अरूपी है। समझ में आया? आहाहा!

वे मोक्षफल को प्राप्त नहीं करते। (अब गाथा) ११, एक बार यह पढ़ते थे और भाई थे। नरसिंहभाई। मौके से आये, वहाँ व्याख्यान में यह चलता था। अपने थे न? नरसिंहभाई, नहीं? मुनिम थे न, यहाँ बैठते थे। उस समय आते थे, उस समय यह चलता था। पर्यूषण और प्रतिक्रमण करने वहाँ जाते थे। सहज ही ऐसा मेल हो जाता है न! सहज ही तब उन्हें आने का अवसर ही था और उसमें यह अष्टपाहुड का वांचन था। वे यहाँ बैठते थे। लोगों को कठिन लगे, सत्य है।

मुमुक्षु : ऐसे ही संस्कार लेकर आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार लेकर आये, बस। आहाहा! उन्हें यही पोसाना हो। उसे दूसरा कोई विचार का अवकाश ही नहीं होता।

मुमुक्षु : वह तो ऐसा ही कहते हैं, अपने जैन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हम जिन हैं, वे लोग ऐसा कहते हैं न! जैनधर्म हमारा ही है। स्थानकवासी का। हम जैन हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई! नवलचन्दभाई! यहाँ कहते हैं कि वे

जैन नहीं हैं, जैन से भ्रष्ट हुए हैं। ऐसा कहते हैं। इसीलिए तो टोडरमलजी ने पाँचवें अध्याय में लिखा है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी को जैनमत में डाला ही नहीं। अन्यमत में डाला है। यह देखो न, यह क्या कहते हैं यह? कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं, श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैनदर्शन ही नहीं है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य थे, तब स्थानकवासी थे ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो थे, परन्तु मन्दिरमार्गी थे न। श्वेताम्बर निकल गये थे। ऐ...सुजानमलजी! ये भी श्वेताम्बर हैं न!

मुमुक्षु : पक्के...

पूज्य गुरुदेवश्री : पक्के। यह तो होवें वे पक्के ही होवें न! उसमें क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी कृपा आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आत्मधर्म की यह चीज़ है। आहाहा!

उसमें आत्मा का जो चारित्र है, वह अलौकिक दशा! उसे तो नग्नदशा ही हो जाती है। चारित्रवन्त हों, वह तो नग्नदशा और जंगल में बसते हैं। ऐसा जो मुनिपने का मार्ग अनादि का सनातन वीतरागमार्ग का था। आहाहा! उससे भ्रष्ट हुए, उन्हें मुक्ति तो नहीं, मोक्ष का फल कहाँ से होगा?

गाथा-११

अब कहते हैं कि जिनदर्शन ही मूल मोक्षमार्ग है –

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।।११।।

यथा मूलात् स्कंधः शाखापरिवारः बहुगुणः भवति।
तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य।।११।।

ज्यों मूल से स्कंध शाखादि अनेकों हों सदा।
त्यों मोक्ष-मग का मूल जिन-दर्शन जिनेंद्रों ने कहा।।११।।

_अर्थ_ – जिसप्रकार वृक्ष के मूल से स्कंध होते हैं; कैसे स्कंध होते हैं कि जिनके शाखा आदि परिवार बहुत गुण हैं। यहाँ गुण शब्द बहुत का वाचक है; उसीप्रकार गणधर देवादिक ने जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।

_भावार्थ_ – यहाँ जिनदर्शन अर्थात् तीर्थंकर परमदेव ने जो दर्शन ग्रहण किया उसी का उपदेश दिया है, वह मूलसंघ है; वह अट्ठाईस मूलगुण सहित कहा है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, छह आवश्यक, पाँच इन्द्रियों को वश में करना, स्नान नहीं करना, भूमिशयन, वस्त्रादिक का त्याग अर्थात् दिगम्बर मुद्रा, केशलोंच करना, एकबार भोजन करना, खड़े-खड़े आहार लेना, दंतधावन न करना – यह अट्ठाईस मूलगुण हैं तथा छियालीस दोष टालकर आहार करना, वह एषणा समिति में आ गया।

ईर्यापथ – देखकर चलना वह ईर्या समिति में आ गया तथा दया का उपकरण मोरपुच्छ की पींछी और शौच का उपकरण कमण्डल धारण करना – ऐसा बाह्य भेष है तथा अन्तरंग में जीवादिक षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व, नव पदार्थों को यथोक्त जानकर श्रद्धान करना और भेदविज्ञान द्वारा अपने आत्मस्वरूप का चिंतवन करना, अनुभव करना ऐसा दर्शन अर्थात् मत वह मूलसंघ का है। ऐसा जिनदर्शन है, वह मोक्षमार्ग का मूल है; इस मूल से मोक्षमार्ग की सर्व प्रवृत्ति सफल होती है तथा जो इससे भ्रष्ट हुए हैं, वे इस पंचमकाल के दोष से जैनाभास हुए हैं, वे श्वेताम्बर, द्राविड़, यापनीय, गोपुच्छ-पिच्छ, नि:पिच्छ – पाँच संघ हुए हैं; उन्होंने सूत्र सिद्धान्त अपभ्रंश किये हैं। जिन्होंने बाह्य वेष को बदलकर आचरण को बिगाड़ा है, वे जिनमत के मूलसंघ से भ्रष्ट हैं, उनको मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं है। मोक्षमार्ग की प्राप्ति मूलसंघ के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही से है – ऐसा नियम जानना।।११।।

गाथा-११ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जिनदर्शन ही मूल मोक्षमार्ग है... देखा, गजब रखा है। उसमें दृष्टान्त आया था न? वृक्ष का दिया था न?

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।।११।।

अर्थ – **जिस प्रकार वृक्ष के मूल से स्कंध होते हैं;...** वृक्ष का मूल होवे तो स्कन्ध आवे। स्कन्ध होवे तो शाखा आवे। स्कन्ध समझे न ? पश्चात् डालियाँ। परन्तु मूल न होवे, वहाँ स्कन्ध कैसा ? और डालियाँ कैसी ? यह तो मूल होवे वहाँ **जिनके शाखा आदि परिवार बहुत गुण हैं। यहाँ गुण शब्द बहुत का वाचक है;...** ऐसा कहते हैं। बहुगुण हो। ऐसा।

मुमुक्षु : बहुत गुण।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत गुण परन्तु इन्होंने कहा है कि **गुण शब्द बहुत का वाचक है;...** यह बहुगुण शब्द तो पड़ा ही है। बहुत गुण तो हैं, ऐसा कहते हैं, बहु शब्द है न। गुण का अर्थ ऐसा क्यों किया ?

मुमुक्षु : गुणों का हुआ न इसलिए बहु के अर्थ में लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण तो बहु वाचक है। वह बहु शब्द तो पड़ा है।

गुण शब्द बहुत का वाचक है; उसी प्रकार गणधर देवादिक ने... गणधर, इस धर्म के तीर्थंकर-धर्म राजा, उनके गणधर दीवान-धर्म दीवान। आहाहा! चार ज्ञान, चौदह पूर्व के धारक अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करनेवाले ऐसे सन्त, गणधर सन्त आदि के **गणधर देवादिक ने जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** ऐसे गणधरों ने, मुनियों ने, सच्चे सन्तों ने **जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल...** ऐसा जैनदर्शन। समझ में आया ? जिसे आत्मदर्शन साक्षात्कार उपरान्त ज्ञान और आनन्द का चारित्र जिन्हें निर्मल प्रगट हुआ है। ऐसी तीन तो निर्विकल्प वीतराग दशा है और अट्ठाईस मूलगुण वीतराग जिनेश्वर ने कहे, वैसे हैं और जिनकी नग्नदशा है। आहाहा! ऐसा जैनदर्शन का मार्ग गणधरों ने कहा हुआ है। तीर्थंकरों ने कहा हुआ, उसमें से शास्त्र में गणधर सन्तों ने रचा है। आहाहा! कहो, इस शास्त्र की रचना में यह आया है, ऐसा कहते हैं।

जिसकी शास्त्र की रचना में ऐसा आया हो कि वस्त्र रखे और पात्र रखे (वह) मुनिपना, वह शास्त्र गणधर के रचित नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन काम। लोगों को अलग-थलग जैसा लगता है।

मुमुक्षु : अलग ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग ही है। क्या हो? भाई! मार्ग ऐसा है, वहाँ क्या हो? आहाहा! कहो, बाबूभाई! ऐसा मार्ग है। जैनदर्शन ही उसे कहते हैं। आहाहा! पहले आया है न? ऐसा गणधरों ने कहा हुआ। गणधर आदि सन्तों ने (कहा हुआ) आहाहा! मोक्ष के स्तम्भ, केवलज्ञान के पथानुगामी ऐसे सन्तों ने तो ऐसा जैनदर्शन कहा है। आहाहा! दुनिया की परवाह छोड़ दे। दुनिया क्या कहेगी? कैसे मानेगी? यह रहने दे। भगवान का मार्ग तो यह है। भगवानजीभाई! आहाहा! आहाहा! लोग इसमें से आधार देते हैं न? श्रीमद् में से। देखो! उसमें यह कहते हैं। बापू! जैनधर्म का आशय श्वेताम्बर-दिगम्बर के आचार्य का आशय आत्मा को शमावने का है। इसमें तो इनकार करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा जो मार्ग, जिसका जैनदर्शन-जैनधर्म की श्रद्धा में मूल है और तदुपरान्त फिर ज्ञान और चारित्र आदि और जिसकी नग्नदशा है तथा अट्ठाईस मूलगुण वीतराग ने कहे हुए, उसका व्यवहार में ऐसे विकल्प होते हैं। मुनि को ऐसा राग होता है। आहाहा! इससे राग होता है, ऐसा बतलाया है परन्तु वह धर्म है, ऐसा नहीं है। उसका व्यवहार जैनदर्शन का कहा है। निश्चय जैनदर्शन के साथ ऐसा व्यवहार जैनदर्शन का होता है, इसलिए वह आदरणीय है और उससे कुछ (धर्म है), ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं है। पण्डितजी! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! अकेला नग्न घूमे, वह कहीं धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : धर्म तो अन्तर में होता है, तब उसे बाह्य कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाह्य पहले कहा परन्तु ऐसा अन्तर में होवे तो ऐसे बाह्य को कहा जाता है परन्तु अन्तर में जहाँ जैनदर्शन की वस्तु क्या है, सम्यक् क्या है, सम्यग्ज्ञान क्या, उसकी खबर भी नहीं और (मुनि) मनवाये, उसे यहाँ मुनिपने में गिना नहीं है। उसे जैनदर्शन में गिनने में नहीं आया है। आहाहा! बहुत मार्ग...

जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है। समझ में आया? ऐसा जो जैनदर्शन, उस जैनधर्म का मूल है। **जिनदर्शन को मोक्षमार्ग का मूल कहा है।** आहाहा! ऐसा जिसकी यह श्रद्धा, व्यवहार ऐसा हो, ऐसी श्रद्धासहित स्व का आश्रय लेकर दर्शन होता है, उसे समकित कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। ऐसा जो मार्ग है, उसकी जिसे श्रद्धा होती है अर्थात् उसका ज्ञान होता है और उसका ज्ञान रखकर फिर स्व का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है, उसे समकिती और धर्म की शुरुआतवाला जीव कहने में आता

है। आहाहा! बहुत से तो इसमें अपने पूर्व के श्वेताम्बर ही होते हैं। कोई स्थानकवासी, कोई मन्दिरमार्गी। नहीं? मार्ग तो यह है। इसमें से फेरफार कुछ भी कम ज्यादा करे, वस्त्र का धागा रखना, उसमें क्या दिक्कत है? काल ऐसा हीन है। वे सब भ्रष्ट हैं। आहाहा! अधिक भाग हो, उसमें ऐसा पढ़े तो तूफान करे, हों! यहाँ तो जंगल है और जंगल का यह मार्ग है। जँचे उसे जँचाना।

मुमुक्षु : जंगल में मंगल और मंगल का मार्ग यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है।

भावार्थ – **यहाँ जिनदर्शन अर्थात् तीर्थंकर परमदेव ने जो दर्शन ग्रहण किया...** देखो! अर्थ किया है। जिनदर्शन। जिन अर्थात् तीर्थंकर। उन्होंने जो दर्शन-मुनिपना, नग्नपना अंगीकार किया। गजब बात, भाई! जिनदर्शन। जिन अर्थात् **तीर्थंकर परमदेव ने जो दर्शन ग्रहण किया, उसी का उपदेश दिया है,...** दर्शन ग्रहण किया और उसी का उपदेश दिया। **वह मूलसंघ है;...** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मूलसंघ यह है कि जिसने जिन तीर्थंकर परमदेव ने जो नग्नपना और मोक्षमार्ग और व्यवहार विकल्प आदि जो है, वह अंगीकार-ग्रहण किया और ऐसा उपदेश किया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब स्पष्टीकरण किया है।

गाथा १४ में स्पष्ट आता है न? कि दर्शन इसे कहना, आहाहा! वस्तु का स्वरूप जो वास्तविक ज्ञान, दर्शन, चारित्र और विकल्प तथा नग्न (पना)। तब कोई कहे कि विकल्प को, नग्नपने को भी जैनदर्शन कहा न? परन्तु इतना व्यवहार नहीं? उसे व्यवहार कहा। वस्तु के दर्शन, ज्ञान, चारित्र को निश्चय कहा। दोनों को दो कहा। आहाहा! पूर्ण वीतराग नहीं तो दो होते ही हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसका अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं है, जिसके ज्ञान में यथार्थता नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जिनदर्शन। जिनदर्शन की व्याख्या की है। '**जिणदंसण मूलो**' है न? इसमें से किया, जिनदर्शन। जिन अर्थात् तीर्थंकर परमदेव और दर्शन अर्थात् जिसने दर्शन ग्रहण

किया अर्थात् मोक्ष का मार्ग, विकल्प और नग्नपना अंगीकार किया। आहाहा! तीर्थंकरदेव, सौ इन्द्र जिनके तलवे चाटते हैं। जिनके जन्म से माता के गर्भ में आवें, तब से आकर इन्द्र सेवा करते हैं। आहाहा! ऐसे जिन ने जब मुनिपना अंगीकार किया, तीर्थंकर परमदेव ने... आहाहा! जब से सर्वज्ञदेव... सर्वज्ञस्वभावी आत्मा अनादि से है, वैसे सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई सर्वज्ञ भी अनादि के हैं। आहाहा! इस प्रकार ऐसा मार्ग भी अनादि का है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञस्वभावी स्वरूप आत्मा वस्तु अनादि-अनन्त है। ऐसे अनन्त आत्मायें हैं और सर्वज्ञस्वभाव है, उसके जाननेवाले प्रगटरूप से भी अनादि के हैं और ऐसा मार्ग जिन्होंने अंगीकार किया, वह भी अनादि का यही मार्ग है। शक्तिरूप, व्यक्तरूप और उसका मार्ग यह। आहाहा! समझ में आया?

इसका विशेष स्पष्टीकरण आयेगा... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)